Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 9, June-2019, ISSN 2230-7540

योग के अनुसार यम-नियम का स्वरूप

Dr. Vikash Kumar*

NET, Ph.D. Philosophy, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar

सारांश – *'योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घं' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ हुआ- समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर योग' तथा 'युजसंयमने' धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा।*

----------X----------

योग के महान ग्रन्थ पातंजलयोगदर्शन में योग के बारे में कहा गया है 'योगश्चित्तवृतिनिरोधः' अर्थात् मन की वृत्तियों पर नियंत्रण करना ही योग है। गीता में भी श्रीकृष्ण ने एक स्थान पर कहा है, 'योगः कर्मसु कौशलम' (कर्मों में कुशलता ही योग है)। चित्त की अज्ञान रूपी प्रवाह को रोककर ज्ञान रूपी प्रवाह की ओर ले जानेवाली बात योग मानता है और इसके लिए अष्टांग योग के अभ्यास की बात का समर्थन करता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि अष्टांग योग के आठ योगांग हैं।

आठो अंग में प्रथम दो (यम-नियम) को नैतिक अनुशासन, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार को शारीरिक अनुशासन और अंतिम तीनों अंग धारणा, ध्यान, समाधि को मानसिक अनुशासन बताया गया है। यम-नियम यौगिक अभ्यास के दो ऐसे महत्वपूर्ण अंग है जो यौगिक अभ्यास का एक पर्याप्त नैतिक आधार प्रस्तुत करता है। दोनो तरह की नैतिक अनुशासन में इस बात की ओर एक स्पष्ट संकेत दिखता है कि इसमें व्यक्ति को इस नैतिक अनुशासन के क्रम मे कुछ अपने व्यैक्तिक दायित्वों से जुड़ना पड़ता है।

यम निवृत्तिमूलक है। यह पाँच है- सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह।

नियम प्रवृत्तिमूलक साधन माने जाते हैं, जो पाँच है- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्राणिधान। योग सर्वप्रथम यम और नियम द्वारा व्यक्ति के मन और मस्तिष्क को ही ठीक करने की सलाह देता है। आसनों एवं प्राणायाम को करने से पूर्व यदि व्यक्ति यम और नियमों का पालन नहीं करता है तो उसे योग से पूर्ण स्वास्थ्य लाभ नहीं मिल सकता है।

योग के अनुसार यम-नियम का स्वरूप

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'युज' धातु से हुई है, जिसका मतलब होता है आत्मा का सार्वभौमिक चेतना से मिलन। योग लगभग दस हजार साल से भी अधिक समय से अपनाया जा रहा है। वैदिक संहिताओं के अनुसार तपस्वियों के बारे में प्राचीन काल से ही वेदों में इसका उल्लेख मिलता है। सिंधु घाटी सभ्यता में भी योग और समाधि को प्रदर्शित करती मोर्तियाँ प्राप्त हुई है। व्यापक रूप से पतंजलि औपचारिक योग दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं। पतंजलि के योग बुद्धि नियंत्रण के लिए एक प्रणाली है, जिसे राजयोग के रूप में जाना जाता है। पतंजलि मानते हैं कि समस्त दुःखो से मुक्ति पाने के लिए एवं द्रष्टा को उसके वास्तविक स्वरूप में जानने अथवा साक्षात्कार करने में योग आवश्यक है। सभी क्लेशों के मूल में अविद्या है जिसका निराकरण चित्तवृत्तियों के नियंत्रण द्वारा ही संभव है और उसके लिए पतंजलि ने दो सामान्य साधारणतम उपाय अभ्यास और वैराग्य को बतलाया है। उनका कहना है कि "अभ्यासवैराग्याभ्याम तन्निरोधः" अर्थात चित्त की अज्ञान रूपी प्रवाह को रोककर ज्ञान रूपी प्रवाह की ओर ले जानेवाली बात योग मानता है और इसके लिए अष्टांग योग के अभ्यास की बात का समर्थन करता है। अष्टांग योग के आठ योगांग इस प्रकार बताये गए हैं:-

1. यम
2. नियम
3. आसन

www.ignited.in

4. प्राणायाम

5. प्रत्याहार

6. धारणा

7. ध्यान तथा

8. समाधि।

इन आठ अंगो के अभ्यास से समस्त अशुद्धियाँ क्षय हो जाती है और ज्ञान प्रदीप्त हो जाती है। उपर के पाँचों अंग को अपेक्षाकृत बहिरंग साधन कहा गया है जबकि धारणा, ध्यान, समाधि को अंतरंग साधन कहा गया है। उपर के आठ अंग परस्पर गहरे ढ़ंग से जुड़े हुए है। ये सभी महत्वपूर्ण अंग है। उपर के आठो अंग में प्रथम दो (यम-नियम) को नैतिक अनुशासन, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार को शारीरिक अनुशासन और अंतिम तीनों अंग धारणा, ध्यान, समाधि को मानसिक अनुशासन बताया गया है। इस तरह स्पष्ट है कि यम-नियम यौगिक अभ्यास के दो ऐसे महत्वपूर्ण अंग हैं जो यौगिक अभ्यास का एक पर्याप्त नैतिक आधार प्रस्तुत करते हैं। इन दोनो तरह की नैतिक अनुशासन में इस बात की ओर एक स्पष्ट संकेत दिखता है कि इसमे व्यक्ति को इस नैतिक अनुशासन के क्रम में कुछ अपने व्यैक्तिक दायित्यों से जुड़ना पड़ता है। यहाँ यम एवं नियम की विस्तार से चर्चा की जा रही है-

यम- ''यम उपरमे'' धातु से उत्पन्न यम शब्द का अर्थ होता है निवृत्त होना। इस तरह यम निवृत्तिमूलक है।

निवृत्तिमूलक यम पाँच हैं- (अ) सत्य (ब) अहिंसा (स) अस्तेय (द) ब्रह्मचर्य तथा (च) अपरिग्रह ।

(अ) अहिंसा -

योग साधकों के लिए हिंसा करना सर्वथा परित्याज्य है। मन, वचन और कर्म से किसी प्राणी के प्रति हिंसा न करना अहिंसा है। इस तरह समस्त प्राणियों के प्रति सभी प्रकार की द्रोह त्याग को अहिंसा माना जाता है। इस तरह अहिंसा को संकुचित अर्थ में न केवल किसी के वध से सम्बद्ध नहीं माना गया है बल्कि इसका व्यापक प्रयोग करते हुए इसे रखा गया है। भावात्मक रूप मे इसे समस्त प्राणी से प्रेम के रूप में भी दिया जाता है। पतंजलि मानते हैं कि जो साधक अहिंसाप्रतिष्ठ होते हैं उसका समस्त प्राणियों में स्वाभाविक वैर त्याग हो जाता है।

(ब) सत्य -

मन, वचन एवं कर्म से सत्य का पालन और मिथ्या का त्याग ही सत्य है। वस्तुतः यथार्थ चिंतन, कथन एवं कर्म में सत्य का अनुष्ठान आवश्यक है। जिस रूप में किसी वस्तु का प्रत्यक्ष किया गया हो या जैसा उसे तर्क या अनुमान से जाना गया है अथवा अधिकारियों से ज्ञात हुआ हो उसी रूप में उस वस्तु के ज्ञान को धारण करना तथा दूसरों को उसी रूप में बतलाना सत्य है। दूसरो के लिए उपकार परम और यथार्थ ज्ञानोत्पादक ज्ञान ही सत्य है। यहाँ केवल मिथ्या वचन के परित्याग की बात नहीं मानी गयी है बल्कि अप्रिय वचनों से परहेज की गयी है।

(स) अस्तेय -

मन, वचन एवं कर्म से किसी वस्तु का हनन न करना, उसके अधिकार एवं प्राप्त वस्तु से उसके अधिकारियों को वंचित न करना ही अस्तेय है। सीधे शब्दों में कहा यह जाता है- दूसरे के स्वामित्व का अपहरण करना स्तेय है और इसका अभाव अस्तेय है।

(द) ब्रह्मचर्य -

मन, वचन एवं कर्म में यौन संयम अथवा मैथुन का सर्वथा त्याग ब्रह्मचर्य है। इसलिए कहा यह जाता है कि साधक को न तो काम करने वाली वस्तु का सेवन करना चाहिए और न ऐसे दृश्यों से गुजरना चाहिए, न उनसे सम्बंधित साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। पतंजलि स्पष्ट मानते हैं कि ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर वीर्यलाभ होता है। वीर्य का तात्पर्य केवल यहाँ शारीरिक उर्जा के रूप में लेना सही नहीं होगा। वस्तुतः इसे समग्र अस्तित्वगत ऊर्जा संरक्षण के रूप में लिया जा सकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसका सम्बन्ध इम्यूनो सिस्टम को संरक्षित एवं संवर्धित करने के रूप में लिया जा सकता है।

(च) अपरिग्रह -

अपने स्वार्थ के लिए धन, संपत्ति एवं भोग सामग्री में संयम न करना परिग्रह है और इसका अभाव अपरिग्रह है। माना यह जाता है कि प्राण धारण करने के लिए आवश्यकता से अधिक का अस्वीकार करना या त्याग करना अपरिग्रह है।

पतंजलि उपरोक्त व्रतों को सार्वभौम महाव्रत मानते हैं जिनका पालन किसी विशिष्ट व्यक्ति, जाति, ध्यान, काल अथवा परिस्थितियों में अनुष्ठेय नही है बल्कि जिसका अनुपालन प्रत्येक जाति, प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक काल एवं

प्रत्येक परिस्थितियों में अनुष्ठेय है। इसलिए इसे पतंजलि ने "सार्वभौम महाव्रत" की संज्ञा दी है।

नियम- जहाँ यम निवृत्तिमूलक साधन है वही नियम प्रवृत्तिमूलक साधन माने जाते हैं जो पाँच है -

(अ) शौच

(ब) संतोष

(स) तप

(द) स्वाध्याय

(च) ईश्वर -प्राणिधान ।

(अ) शौच -

पानी, मिट्टी आदि के द्वारा शरीर, वस्त्र, भोजन और मकान आदि के मल को दूर करना बाह्य शुद्धि मानी जाती है जबकि सदभावनाओं, मैत्री, करूणा, मोदिता आदि से की जाने वाली शुद्धि आंतरिक शुद्धि मानी जाती है। यहाँ शौच से दो तरह की शुद्धि की क्रिया को स्वीकार किया गया है। पतंजलि मानते हैं कि बाह्य शौच से अपने ही शरीर के अंगो के प्रति आसक्ति नही रह जाती और दूसरे से संसर्ग करने की इच्छा भी जाती रहती है। वहीं आभ्यंतर शौच से मन की प्रफुल्लता, एकाग्रता, इन्द्रिय विषय एवं आत्म दर्शन की योग्यता आदि क्रमशः प्राप्त होने लगती है।

(ब) संतोष -

कत्र्तव्य का पालन करते हुए उसका जो कुछ परिणाम उपलब्ध हो एवं प्रारब्ध के अनुसार अपने आप जो कुछ प्राप्त हो, इतना ही नहीं जिस अवस्था एवं परिस्थिति में रहने की स्थिति प्राप्त हो उसी में संतुष्ट रहना, किसी प्रकार की तृष्णा न करना संतोष है। इसे ऐसे भी कहा जाता है- "विषय वासना के परित्याग से तृष्णा रहित होने से उत्पन्न सुख संतोष है।" कहा जाता है- संतोष से परम सुख का लाभ मिलता है ('संतोषं परम् सुखम्')।

(स) तप -

अपने वर्ण-आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त होता है उसे सहन करना तप है। व्रत, उपवास आदि को भी इसी में शामिल किया जाता है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हानि-लाभ आदि सहन कर इन दण्डो से उबरना ही तप माना जाता है।

(द) स्वाध्याय -

जिनसे अपने कत्र्तव्य और अकत्र्तव्य का बोध हो सके वैसे-वैसे शास्त्र आदि का अध्ययन एवं महापुरूषों के वचन का अनुपालन स्वाध्याय के अंतर्गत आता है। इसके साथ-साथ इश्वर के वाचक 'ओमकार' का जाप करना भी स्वाध्याय की ही प्रक्रिया मानी जाती है। वस्तुतः जप के तीन तरीके बतलाये जाते हैं। वे हैं- उपांशु, वाचिक और मानस। होंठ की स्पंदन की क्रिया प्रतीत होने पर भी जिससे दूसरों को शब्द का ज्ञान न हो पाए इस तरह के जाप स्वाध्याय को उपांशु कहते हैं। लेकिन जिसमे स्पष्ट रूप से शब्द-बोध कराने वाला ध्वनि होता है वैसे जप को वाचिक जप कहते हैं। जब बाह्य स्पंदन शून्य शब्द चिंतन को किया जाता है तो उसे मानस जप कहते हैं । ऐसा माना जाता है कि वाचिक से श्रेष्ठ उपांशु होता है जबकि उपांशु से श्रेष्ठ मानस होता है।

(च) ईश्वर-प्राणिधान -

फल की इच्छा का परित्यागपूर्वक समस्त कर्मो का परम गुरू ईश्वर को समर्पण करना ईश्वर-प्राणिधान कहलाता है। कुछ लोगो ने इसे ईश्वर पूजन के अर्थ में भी लिया है। स्फूर्ति, स्मरण एवं पूजन द्वारा मन, वचन एवं कर्म से निश्छल भक्ति इसका स्वरूप है। संपूर्ण क्रियाएं ईश्वर को अर्पित करने के लिए हर समय भगवद स्मरण करना आवश्यक होता है। इस तरह का ईश्वर के प्रति समर्पण जहाँ फल की आकांक्षा के वगैर कर्म को ईश्वर के प्रति समर्पण किया जाता है वह ईश्वर-प्राणिधान है। ईश्वर के नाम-रूप, लीला-धाम,गुण और प्रभाव आदि का श्रवण, कीत्र्तन और मनन ईश्वर-प्राणिधान के अंग हैं।

पतंजलि मानते हैं कि कल्याण पथ में अनेक विध्न उपस्थित हुआ करते हैं। यम-नियम की अभ्यास में हिंसा आदि वितर्क या बाधा उपस्थित होने पर उनकी प्रतिपक्षों की भावना करनी चाहिए। उनका मानना है कि हिंसा तीन स्तरों पर संपन्न होती है। वह स्वयं अपने द्वारा (कृत), दूसरा दूसरों के द्वारा की जाती है (कारिता) और कभी-कभी अनुमोदन के द्वारा उसे शक्ति प्रदान की जाती है (अनुमोदन)। पतंजलि का मानना है यम और नियम के विरोधी यम-नियम की साधना नहीं बाधा पहुंचाया करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे में उन्होने एक मनोवैज्ञानिक क्रियाविधि के रूप में प्रतिपक्ष की भावना के अभ्यास की बात की है जिसका अभ्यास बारंबार

करने की बात की जाती है। इस तरह योग में नैतिकता के पर्याप्त आधार मौजूद हैं।

सन्दर्भ:-

1. पातंजलयोगदर्शन, ब्रह्मलीनमुनि, चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1970, सूत्र 1.2 'योगश्चित्तवृतिनिरोधः'।
2. योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 1.12 'अभ्यासंवैराग्यायाम तन्निरोधः'।
3. योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 1.13, 'तत्र स्थितौ यत्नोअभ्यासः'।
4. योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 2.29 'यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यानं समाधयो अष्टावङ्गानि'।
5. योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 2.30, 'अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमः'।
6. योगसू., व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 2.32, 'शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः'।
7. योगसूत्र, व्यासभाष्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1980, सूत्र 2.31, 'जाति देश काल समयान विच्छिन्नाः सार्वभौम महाव्रतं'।
8. बृहदारण्यकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर।
9. योगसारसंग्रह, विज्ञानभिक्षु, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

Corresponding Author

Dr. Vikash Kumar*

NET, Ph.D. Philosophy, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bhagalpur, Bihar